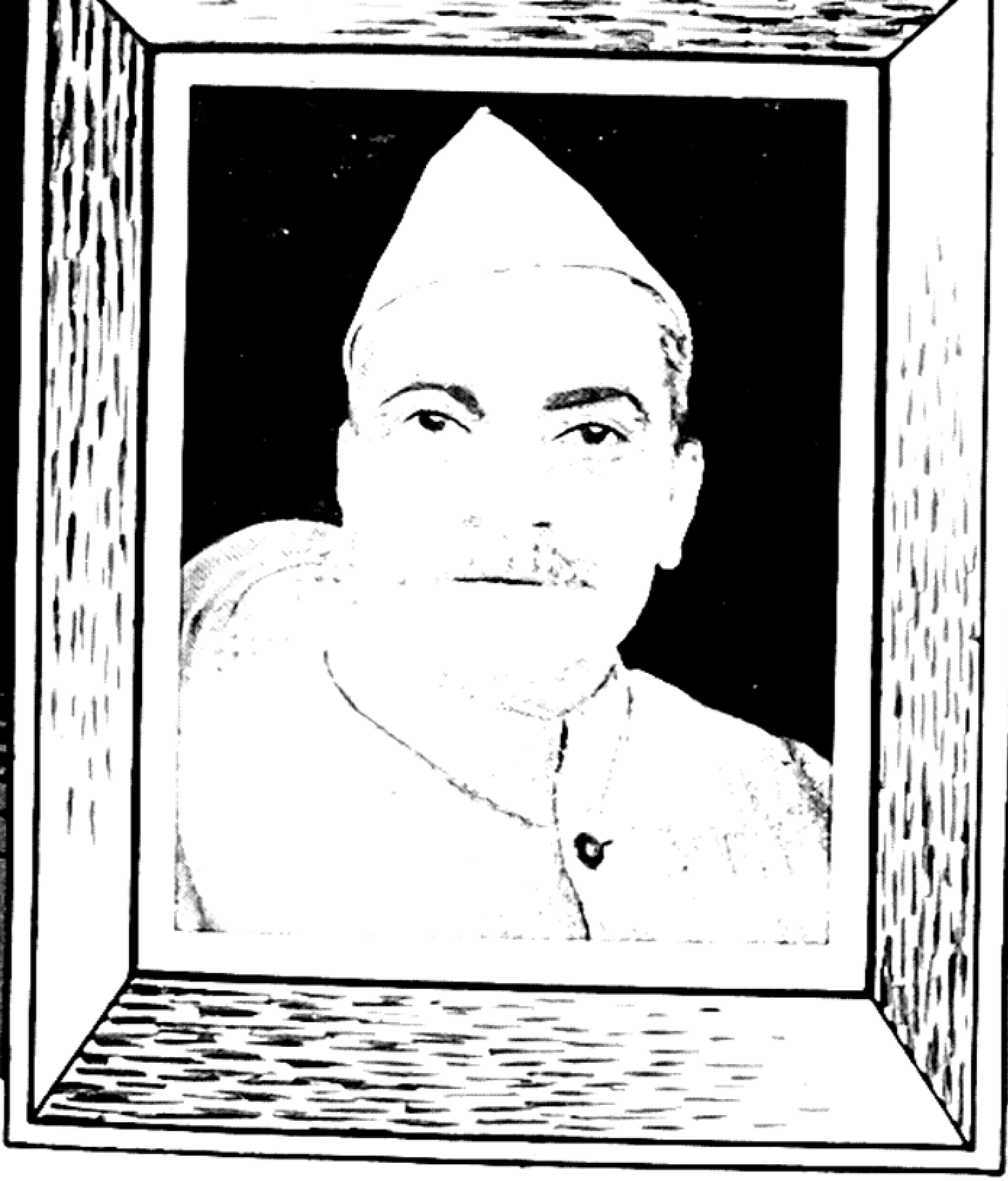


राष्ट्र पति

राजेन्द्र प्रसाद

— सत्यकाम विद्यालंकार

राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद

Vinod.

लेखक

श्री 'विनोद'

Raj Pal & Sons.

प्रकाशक

राजपाल एण्ड सन्ज़

कश्मीरी गेट,

दिल्ली

18/-

मूल्य : आठ आने

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, २७ शिवाश्रम, क्वीन्स रोड, दिल्ली में मुद्रित।

राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद

गांधी जी ने एक बार कहा था कि "मैं जिस भारतीय प्रजातन्त्र की कल्पना करता हूँ, उसका अध्यक्ष कोई किसान ही होगा।"

आज भारत के सबसे ऊँचे पद के लिए जिस महान् पुरुष का चुनाव जनता के प्रतिनिधियों ने एकमत होकर किया है वह जन्म से किसान तो नहीं हैं, किन्तु प्रकृति से वह किसान ही है। उसमें किसान की सादगी और कर्मठता है। उसका हृदय किसान के हृदय की तरह भोला और विश्वासी है। देश के किसी भी वर्ग से यदि उसके गुण-कर्म-स्वभाव मिलते हैं तो वह किसान-वर्ग ही है। इतने बड़े देश के अध्यक्ष होकर भी उनके जीवन पर खेती करने वाले किसानों की छाया ही अधिक दिखाई देती है। शहरी जीवन से उन्हें अब भी उतनी ही अरुचि है जितनी पहले थी। आज भी उनका हृदय किसान-हृदय है।

उनके व्यक्तित्व में विचित्र आकर्षण है, आंखों में शालीनता है और चेहरे पर ऐसी नरमी है जो प्रत्येक

मिलने वाले के विश्वास को प्रेरित करती है। उनसे मिलकर यही प्रतीत होता है कि जैसे किसी आत्मीय जन से ही बात कर रहे हों। इस कारण उनसे अपने मन की सारी बात कह डालने में कुछ भी संकोच नहीं होता। भारत के प्रेसिडेण्ट पद के लिये देश को उनसे अधिक योग्य व्यक्ति नहीं मिल सकता था। इतना ऊँचा पद पाकर भी आप पहले की तरह ही विनम्र और सरल स्वभाव के हैं। अहंकार की छाया भी आपके व्यक्तित्व पर नहीं पड़ी है। इतने सरल होते हुए भी आपके स्वभाव में ऐसी असीम गम्भीरता है कि उसकी थाह ही नहीं मिलती। जीवन के दायित्वों का भार उठाते-उठाते आप बहुत खुलकर हँसना भूल गये हैं। चेहरे पर मुस्कान की हल्की-सी रेखा अवश्य हर समय बनी रहती है किन्तु खिलखिलाकर हँसना नहीं जानते। फिर भी आप कठोर नहीं हैं। आपके ऊपर से गम्भीर और सदा शान्त चेहरे के अन्दर अपार स्निग्धता, दया और वात्सल्य-भरी करुणा का स्रोत भरा हुआ है। पवित्रता और निर्दोषता के आप अवतार हैं। आपके मुख से कभी किसी के लिये कड़वे शब्द नहीं निकलते। दिल से भी आप सदा सबकी मंगल-कामना ही करते रहते हैं। आप

किसी भी अवस्था में किसी का अमंगल सोच ही नहीं सकते। सच्चे अर्थों में आपको अजातशत्रु कहा जा सकता है। वैर भावना ने कभी आपका स्पर्श भी नहीं किया। कल्पना में भी आपने किसी का अमंगल नहीं चाहा। इन दैवीय गुणों की प्राप्ति के लिये आपको साधना नहीं करनी पड़ती, बल्कि ये गुण स्वयं आपके व्यक्तित्व में समा गये हैं।

बचपन से ही आपमें इन गुणों का बीज विद्यमान् था। आपके बचपन की बातों का ज्ञान आप द्वारा लिखित आत्मकथा से भलीभांति हो सकता है। आपके पूर्वज उत्तर प्रदेश से चलकर बिहार के जिला सारन के एक गांव जीरादेई में रहते थे। जीरादेई के पास ही एक छोटा-सा राज्य 'हथुआ' नाम से था। राजेन्द्र बाबू के दादा श्री चौधरलाल जी इस राज्य के दीवान थे। २५—३० वर्ष तक वह इस राज्य के दीवान रहे। उन्होंने स्वयं भी कुछ ज़मीन ख़रीदी थी। राजेन्द्रबाबू के पिता श्री महादेवसहाय इस ज़मींदारी को देख-भाल के लिये घर पर ही रहते थे। आपके चाचा जगदेवसहाय भी घर पर रहकर ही ज़मींदारी का काम देखते थे। उनके अपने कोई सन्तान नहीं थी। राजेन्द्रबाबू को ही वह अपने पुत्र की तरह मानते

थे। अपने दादा, पिता और चाचा के लाड़-प्यार में ही राजेन्द्रबाबू का पालन-पोषण हुआ। परिवार के सब लोग बड़े प्रेम से रहते थे। अपने बचपन की इन मधुर स्मृतियों के कारण ही राजेन्द्रबाबू आज भी संयुक्त परिवार की पद्धति के समर्थक हैं। हिन्दू-कोड-बिल पर भाषण करते हुए आपने संयुक्त परिवार की महिमा का जो वर्णन किया था, वह आपके अपने सुन्दर अनुभवों के आधार पर ही आश्रित था। इसलिए आप तलाक तथा अन्य पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित सुधार-योजनाओं के पक्ष में नहीं हैं।

अपने बचपन के दिनों का वर्णन करते हुए राजेन्द्रबाबू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—"मुझे अच्छी तरह याद है कि मैं और मेरे चाचा की लड़की, जो मुझसे पांच-छः महीने छोटी थी, चाचाजी के ऊपर लोट-पोटकर खेला करते थे।" राजेन्द्र बाबू के पिता श्री महादेवसहाय को बाग़ लगाने का बड़ा शौक़ था। उनका समय बाग-बगीचे लगाने में ही बीतता था। आज भी उनके लगाये आम के दो पेड़ बाग़ में खड़े हैं। श्री महादेवसहाय फ़ारसी के अच्छे विद्वान् थे। संस्कृत का भी उन्हें ज्ञान था। आयुर्वेद और ज्योतिष में उनकी गहरी दिलचस्पी थी। इन विषयों की पुस्तकों का

आपने घर में अच्छा संग्रह किया हुआ था। आयुर्वेद में दिलचस्पी होने के कारण आपने वैद्यक का अच्छा अभ्यास कर लिया था। आपकी चिकित्सा से सैकड़ों रोगियों को लाभ हुआ था। अतः आपका यश चारों ओर फैल गया था। आपका शारीरिक गठन बहुत दृढ़ था। बड़ी अवस्था में भी आपको व्यायाम का शौक़ था। घोड़े की सवारी भी उन्हें बहुत पसन्द थी। राजेन्द्रबाबू को भी उन्होंने घुड़सवारी सिखाई थी। खेल-कूद में भाग लेने को आप सदा राजेन्द्रबाबू को प्रोत्साहित किया करते थे। अपने बचपन की खेल-कूद का वर्णन करते हुए राजेन्द्रबाबू लिखते हैं—

"लड़कपन में हम लोग देहाती खेल भी खेला करते थे। उन दिनों कबड्डी और चिक्का का प्रचलन ही अधिक था। कालेज की पढ़ाई खतम होने तक भी ये खेल जारी रहे। जब कभी छुट्टियों में हम जीरादेई गांव में जाते तो खेल ज़रूर खेलते। इनमें मेरा भाई भी शरीक होता था। एक खेल गांव में और भी प्रचलित था। उसे दोल्हापाती कहते हैं। उसमें गाछों पर चढ़ना होता है। मैं गाछों पर चढ़ने से डरता था। इस लिये इस खेल से दूर ही रहता था। गांव में नदी

नहीं थी, इसलिये मैं तैरना भी नहीं सीख सका।"

बचपन में राजेन्द्रबाबू को अपनी माँ और दादी के मुख से रामायण और महाभारत की कथायें सुनने का अवसर मिलता था। उनका प्रभाव आपके जीवन पर अब भी है। बचपन में सुने भजनों और रामायण की कथाओं का वर्णन करते हुए आपने अपनी आत्म-कथा में लिखा है :—सर्दियों की लंबी रातों में जब बहुत सुबह ही मेरी नींद खुल जाती थी तो मैं मां को भी सोने नहीं देता था। वह भी जागकर मुझे प्रभाती सुनाया करती। कभी-कभी रामायण महाभारत की कथायें भी कहा करतीं। उन भजनों और कथाओं का प्रभाव मेरे दिल पर बहुत गहरा पड़ता था।

१. शिक्षा-काल

पांच वर्ष की अवस्था में माता-पिता ने पढ़ने के लिये मदरसे में भेज दिया। उन दिनों प्रायः सभी स्कूलों में मौलवी लोग ही पढ़ाई का श्रीगणेश किया करते थे। प्रारम्भ में पढ़ाई भी फ़ारसी अक्षरों के साथ शुरू होती थी। यह प्रथा सारे भारत के प्रारंभिक स्कूलों में प्रचलित थी। इनके साथ दो चचेरे भाई भी स्कूल के

साथी बने। इनके भाई बड़े नटखट थे। मौलवीसाहब से छेड़छाड़ करने में ही उन्हें विशेष आनन्द आता था। राजेन्द्र बाबू ऐसे शरारती नहीं थे। वह अपने भाइयों की छेड़खानियों में शरीक नहीं हुआ करते थे। यह मौलवीसाहब सात-आठ महीनों तक लड़कों के कान ऐंठने के बाद चले गये। फिर दूसरे मौलवी आये। उन्होंने लड़कों को फ़ारसी की सभी प्रारम्भिक पुस्तकें पढ़ा दीं।

उन दिनों आज की तरह बच्चों को सीधा स्कूल में भरती करा देने की प्रथा नहीं थी। स्कूल जाने से पहले मौलवी की शरण लेकर मकतब की सीढ़ियों पर धीरे-धीरे चढ़ना पड़ता था। पढ़ाई का अर्थ होता था सारे पाठ को कंठाग्र कर लेना। सब कुछ कंठस्थ करने की इस प्रक्रिया को 'अमोख़्ता करना' भी कहा जाता था। मौलवीसाहब के ढंग भी निराले थे। कभी आप तख़्त पर बैठते तो कभी खाट पर। लड़के सभी ज़मीन पर टाट बिछाकर बैठा करते थे। रोज़ सवेरे आकर उन्हें एक दिन पूर्व का याद किया हुआ पाठ सुनाना पड़ता था। मौलवियों की पाठविधि बालकों पर अनावश्यक दबाव डालती है। उसका प्रभाव कोमल प्रकृति के बालकों के मस्तिष्क पर

अच्छा नहीं पड़ता। किन्तु बालक भी उसका उपाय ढूँढ निकालते हैं। जल्दी छुट्टी लेने के लिये वे कोई न कोई तजवीज़ खोज ही लेते हैं। 'यमुना भाई' उन नट-खट बालकों के नेता थे। पढ़ने के लिये तेल का दीया जलाया जाता था। यमुना भाई दिन को ही कपड़े में रेत बाँधकर पोटली बना रखते थे। और उसे तेल के दीये में रखकर दीये का सारा तेल सोख लेते थे। इससे दीये की बत्ती रात को जल्दी बुझ जाती थी। बच्चों को जल्दी सोना मिल जाता था।

बालक राजेन्द्र का बचपन और उनका प्रारम्भिक शिक्षाकाल गांव में ही बीता है। इसीलिये उनके जीवन में गांव के सादे रहन-सहन की अमिट छाप है। हमारे देश के अन्य शिरोमणि नेता शहरी जीवन में पले हुए हैं। ग्रामीण-जीवन और ग्राम्य-संस्कृति की छाप उनके जीवन में नहीं है। उन दिनां गांव का जीवन आज के जीवन से कुछ निराला था। गांव अपने-आप में स्वावलम्बी होते थे। उन्हें शहरों का मोहताज नहीं होना पड़ता था। जीवन की सब आवश्यक वस्तुएं गांव में ही मिल जाती थीं। सप्ताह में एक दिन गांव की पैंठ लगती थी, बाज़ार भरता था। यह दिन गांव के

बालकों के लिये उत्सव का दिन होता था। राजेन्द्रबाबू के गांव ज़ीरादेई में भी यह बाज़ार प्रति सप्ताह लगता था। ज़ीरादेई से कुछ दूरी पर सीवान का कस्बा था। वहां से रंग-विरंगे खिलौने आते थे। खेल-तमाशों की और चीजें भी आती थीं।

गांव के जीवन में मन्दिर-मस्जिद का भी बड़ा महत्व होता है। राजेन्द्रबाबू के गांव ज़ीरादेई में भी दो छोटे-छोटे मन्दिर थे। इनमें मन्दिर के पुजारी रहा करते थे। इन मन्दिरों में रोज़ सुबह-शाम आरती होती थी, घन्टियां बजती थीं और शंखनाद होता था। रामनवमी या जन्माष्टमी के अवसरों पर मन्दिर के आंगन को फूल-पत्तियों की बन्दनवारों से सजाया जाता था। राजेन्द्रबाबू भी बालकों की टोली में शामिल होकर मन्दिर के दर-वाज़ों और सिंहासनों को सजाने में भाग लेते थे। इन त्यो-हारों पर आप व्रत भी रखते थे और आरती में भी शरीक होते थे। बचपन से ही इस प्रकार के धार्मिक वातावरण में पलने के कारण आपके आचार-विचार में धार्मिक संस्कारों का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उन दिनों के त्यौहारों की एक और विशेषता थी। हिन्दू और मुसल-मान अपने-अपने त्यौहार मनाते हुए भी एक-दूसरे के

तीज-त्यौहारों में योग देते थे। हिन्दू ईद पर मुसलमानों की खुशियों में हाथ बटाते थे तो मुसलमान दिवाली पर घर में दिये जलाते थे। गांव के ऐसे निश्छल, निर्मल वातावरण में राजेन्द्रबाबू का पालन-पोषण हुआ था। इसलिये आप ग्रामीण भारत के सच्चे प्रतिनिधि कहलाते हैं। ग्रामीणों के दुःख-दर्दों को जितनी अच्छी तरह आप पहचान सकते हैं उतना कोई दूसरा नेता नहीं जान सकता। ग्रामीणों की सरलता, कर्मठता और सचाई के सब गुण आप में कूट-कूट कर भरे हैं। इसलिए आज आप भारतीय ग्रामीणों को भी उतने ही प्रिय हैं जितने भारत के नागरिकों को।

अपने गांव में प्रारम्भिक शिक्षा लेने के बाद आप छपरा के स्कूलों में भरती हुए। छपरा के स्कूल से ही आपने मैट्रिक की परीक्षा पास की। छपरा में रहते हुए आपका सम्पर्क वहाँ के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डित विक्रमादित्य मिश्र से हो गया था। उनकी प्रेरणा से आपने घर पर ही संस्कृत का भी अध्ययन शुरू कर दिया। संस्कृत का यह अभ्यास अधिक दिन नहीं चला, किन्तु थोड़े ही दिनों में आप इस योग्य हो गये कि हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले संस्कृत शब्दों से आपका परिचय हो

गया। फ़ारसी तो आप पढ़ ही चुके थे, संस्कृत के अभ्यास के कारण आप दोनों के पण्डित हो गये। यही कारण है कि आप अपनी हिन्दी में संस्कृत और फ़ारसी दोनों भाषाओं के सरल शब्दों का प्रयोग बड़ी सुविधा से कर सकते हैं।

मैंट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद आप कलकत्ता में कालेज की शिक्षा के लिये चले गये। वहाँ डफ कालेज में आप दाखिल हुए। उन दिनों वहाँ सर जगदीशचन्द्र-बोस पदार्थ विज्ञान का विषय पढ़ाते थे और डा० पी० सी० राय रसायन-शास्त्र के प्रोफ़ेसर थे। पढ़ाई में राजेन्द्रबाबू बहुत कुशल थे; कक्षा में प्रायः प्रथम ही आते थे। एफ० ए० की परीक्षा में भी भी आप सबसे प्रथम आये। इस असाधारण सफलता के फलस्वरूप ही आपको २५ रु० मासिक की छात्रवृत्ति मिलने लगी यह छात्रवृत्ति दो वर्षों तक मिलती रही। बी० ए० की परीक्षा में भी आप प्रथम आये। इसके बाद आपको ६० रुपये की दो छात्रवृत्तियां मिलने लगीं।

बी०ए० की परीक्षा के बाद आप एम०ए० की तैयारी में लग गये। किन्तु इसी बीच में आपके पिता जी के देहान्त का समाचार आगया। पढ़ाई छोड़कर घर जाना

पड़ा। तैयारी में विघ्न पड़ गया। इसी कारण एम० ए० की परीक्षा में प्रथम नहीं आ सके।

२. कार्यक्षेत्र में प्रवेश

विश्व-विद्यालय की सभी परीक्षाओं में विशिष्ट अंकों के साथ पास होने के कारण आपको कई स्थानों से प्रोफ़ेसर बनने का निमन्त्रण मिला। मुज़फ्फर कालेज से भी आपको बुलावा आया था। उसे आपने स्वीकार कर लिया। प्रोफ़ेसर का काम आपकी रुचि के बहुत अनुकूल नहीं था। ६-१० महीने तक उसे निभाने के बाद आपने कानून की परीक्षा पास करने का निश्चय किया। इस परीक्षा के लिये आपको फिर कलकत्ता जाना पड़ा। १९१५ में आपने कानून की परीक्षा पास करली। इस परीक्षा के पास करने के साथ आपका विद्यार्थी-जीवन समाप्त हो गया।

विद्यार्थी-जीवन की समाप्ति के बाद आपको कार्य-क्षेत्र का चुनाव करना था। इस चुनाव में अब कोई संदेह नहीं रहा था। वकालत का काम शुरू कर दिया। १९१६ में पटना हाईकोर्ट खुल गया, जिससे आपको वकालत का काम करने के लिये दूसरे प्रांत में जाने की ज़रूरत नहीं रही। पटना में ही वकालत का काम शुरू हो गया। पांच वर्ष तक यह काम बड़ी सफलता से चलता रहा। आपकी

भाषण शैली का प्रभाव न्यायाधीश पर बहुत अच्छा पड़ता था। केस की तैयारी में भी आप अनथक परिश्रम करते थे। बहुत शीघ्र आप पटना के सर्वशिरोमणि वकील बन गये। आपकी योग्यता से उस समय के जज सर आशुतोष भी बहुत प्रभावित हुए थे।

वकालत का काम आप तब तक बड़ी सफलता से करते रहे जब तक गांधीजी के असहयोग आन्दोलन के कारण आपको वकालत का सदा के लिये त्याग नहीं कर देना पड़ा। गांधी जी के सम्पर्क में आने से पूर्व भी आप सार्वजनिक कार्यों में उत्साह-पूर्वक योग देते रहते थे। इस का श्रीगणेश १६०५ में वंग-भंग और स्वदेशी आन्दोलन के समय ही होगया था। ७ अगस्त १६०५ के दिन कलकत्ता में जो विराट् सार्वजनिक सभा हुई थी, उसमें आप भी शामिल हुए थे। उस सभा में ही आपने स्वदेशी का व्रत लिया था। उसके एक वर्ष बाद कलकत्ता में छात्र सम्मेलन नाम की एक संस्था खुली थी। इसका उद्देश्य नवयुवक विद्यार्थियों में राष्ट्रीय भावना जागृत करना था। इस संस्था के अध्यक्ष बिहार के राष्ट्रीय नेता मि० शर्फुद्दीन थे। सम्मेलन का पहला अधिवेशन पटना कालेज के विशाल भवन में हुआ था। सम्मेलन के आयोजन में

राजेन्द्रबाबू का बड़ा हाथ था। छात्रों में राष्ट्रीय भावना जागृत करने के उद्देश्य से संगठित सभाओं में यह पहिला ही सम्मेलन था जो इतने विशाल रूप में किया गया था। बाद में इस छात्र सम्मेलन को ही अखिल भारतीय रूप दे दिया गया। प्रति वर्ष इसकी बैठक देश के भिन्न-भिन्न भागों में होती रही। इस सम्मेलन के अनेक अग्रणी कार्यकर्त्ता असहयोग आन्दोलन के नेता बने। राष्ट्रीय युद्ध के सैनिक तैयार करने में इस संस्था ने अनमोल काम किया। संस्था के संगठन और संचालन का पूर्ण दायित्व श्री राजेन्द्रबाबू का ही था।

राष्ट्रीय कार्यों के प्रति आपकी स्वाभाविक रुचि थी। सार्वजनिक सेवा के कार्य में आप अपने विद्यार्थी-काल से ही दिलचस्पी लेने लगे थे। जब आप कलकत्ता में पढ़ते थे, तब १९०६ में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हुआ था। उसमें आप स्वयं-सेवक बनकर शामिल हुए थे। इस अधिवेशन में लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, श्री अरविन्द घोष, श्री गोपालकृष्ण गोखले, श्री दादाभाई नोरोजी आदि सभी श्रद्धास्पद नेता आये थे। अधिवेशन में उनके भाषण सुनने का अवसर भी आपको मिला। तभी से आपका झुकाव कांग्रेस की ओर

होगया। विदेशी शासन के विरुद्ध युद्ध करना आपने अपने जीवन का आदर्श बना लिया। १९११ में आप कांग्रेस के विधिवत् सदस्य ही नहीं, बल्कि कांग्रेस प्रतिनिधि भी बन गये। उस वर्ष का अधिवेशन कलकत्ता में हुआ था। उसमें आप 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी' के सदस्य बनकर आये थे। कांग्रेस की कार्रवाई में आपने भाग भी लिया था। किन्तु अभी आपका कार्यक्षेत्र केवल बिहार ही था। और वह भी बिहार के छात्रों तक ही मुख्यतया सीमित था। उस समय तक आपका विद्यार्थी-जीवन भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ था, इसलिये भी आप अपनी सम्पूर्ण शक्ति कांग्रेस को अर्पण नहीं कर पाये थे।

इन्हीं दिनों १९१० में, श्री गोखले ने आपको 'सर्वेन्टस आफ़ इण्डिया सोसायटी' में शामिल होने का निमन्त्रण दिया था। उन्होंने आप से कहा था कि "हो सकता है कि तुम्हारी वकालत खूब चले, तुम बहुत धन पैदा कर सको, बहुत आराम और विलास का जीवन बिता सको, शायद तुम्हारे पास भी अमीरों के सब ठाठ जुट जाएं, किन्तु देश का भी कुछ अधिकार अपने नौजवानों पर होता है। तुम बहुत योग्य युवक हो, तुम्हारे हाथों देश की अतुल सेवा हो सकती है, अतः

तुम सोसायटी में शामिल हो जाओ। सोसायटी का उद्देश्य जीवन भर देश-सेवा का व्रत लेने वाले युवकों का दल बनाना है।" गोखले के आग्रह का प्रभाव राजेन्द्रबाबू पर बहुत गहरा पड़ा। उनकी अन्तरात्मा में लोक-सेवा की इच्छा पहले ही जागृत हो चुकी थी।

श्री गोखले का निमन्त्रण उन्हें अपने लक्ष्य की सिद्धि में ईश्वरीय प्रेरणा प्रतीत हुआ। कई दिन तक उनके मन में संघर्ष चलता रहा। एक ओर गृह-कार्यों का दायित्व था। दूसरी ओर देशसेवा का व्रत था। घर में आपके सहारे जीने वाले कई प्राणी थे। वृद्धा माता थी, पत्नी थी, तीन पुत्रियां थीं और एक लड़का था।। उनकी देख-रेख का भार आप पर ही था। अपने भाई पर घर का सारा भार छोड़कर देश-सेवा में लग जाना आपने उचित नहीं समझा। आपकी अन्तरात्मा ने साक्षी नहीं दी कि आप अपने आश्रितों का दामन छोड़कर लोक-सेवा के काम में सारी शक्तियाँ लगा दें। इसलिए प्रबल आकांक्षा होते हुए भी आपने उस पर संयम कर लिया। अन्य अनेक महत्वाकांक्षी नवयुवकों की तरह आप भी बड़े कामों के पीछे भागने वाले होते, तो घर के बन्धन तोड़कर सार्वजनिक कार्यों में जुट जाते। किन्तु, आप तो महत्वाकांक्षी

नहीं थे। आपको बड़ा बनने या कहलाने की इच्छा नहीं थी। कर्तव्य की पुकार को आपने सुना और सुनकर गृह-जीवन की जिम्मेदारियाँ निभाने का निश्चय किया।

३. गृह-जीवन

जिस गृह-जीवन के सुख को बनाए रखने के लिये आपने श्री गोखले के निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया था, उसका कुछ परिचय देने के बाद ही हम उनके उस आगामी सार्वजनिक जीवन पर प्रकाश डालेंगे जिसका प्रारंभ गाँधीजी के संपर्क में आने के बाद हुआ।। राजेन्द्रबाबू की गृह-व्यवस्था भारतीय आदर्शों के अनुरूप थी। परिवार के सब सदस्य एक ही मकान में रहते थे। उनका विभाजन नहीं हुआ था। उन्होंने संयुक्त परिवार की भारतीय प्रणाली को ही आदर्श माना था। आज भी राजेन्द्रबाबू इसी आदर्श के पुजारी हैं। इसीलिये हिन्दू कोड-बिल को उनका सर्वांश समर्थन नहीं मिला है। उनके कुटुम्ब की व्यवस्था उन्हीं प्राचीन आदर्शों के अनुसार थी, जिनके अनुसार घर के वयोवृद्ध व्यक्ति को ही घर का प्रभु माना जाता है और उसके संकेत पर ही घर का प्रबन्ध होता है। राजेन्द्रबाबू के

बड़े भाई महेन्द्रप्रसाद उनसे आठ वर्ष बड़े थे। इसलिये आपने अपने बड़े भाई के आदेशों को कभी टाला नहीं। बड़े भाई भी आपसे स्नेह करते थे। उन्होंने राजेन्द्रबाबू को सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने की पूरी स्वतन्त्रता दे दी थी। राजेन्द्रबाबू की अनुपस्थिति में वही गृह-व्यवस्था करते थे। बड़े भाई यदि गृहस्थी का बोझ अपने सिर पर न उठाते तो राजेन्द्रबाबू के लिये सार्वजनिक जीवन में भाग लेना असंभव हो जाता।

विवाह के सम्बन्ध में राजेन्द्रबाबू को भी उसी बाल-विवाह प्रथा का शिकार होना पड़ा जिसके महात्मा गाँधी शिकार हुए थे।

जब आप अभी पांचवीं कक्षा में पढ़ते थे और आयु भी बारह वर्ष से अधिक नहीं थी, तभी आपका विवाह हो गया। जिस गाँव की बहू से शादी हुई थी वह आपके जन्मस्थान से १८-२० कोस ही दूर था। वहाँ बरात के जाने और शादी होने की बातों का वर्णन आपने स्वलिखित आत्मकथा में बड़े सुन्दर शब्दों में किया है। आपने लिखा है—"बरात जीरादेई की रसमों को समाप्त करके रवाना हुई। मैं एक विचित्र प्रकार की पालकी में बैठा था। भाई साहब घोड़े पर

बैठे थे। जेठ का महीना था। पालकी में छत नहीं थी। गरमी कड़ाके की पड़ रही थी। लू के झोंके भी आ रहे थे। मैं धूप और गरम आंधी, दोनों का शिकार हो रहा था। अन्त में बरात पहुँची। लेकिन तब तक काफ़ी रात हो गई थी, मैं रात को जल्दी सोने का आदी था। इसलिये बरात के पहुँचने से पहिले ही मैं पालकी में सो गया। दो दिनों की थकावट के कारण नींद भी खूब गहरी आई। नियत स्थान पर पहुँचने के बाद भाई साहब ने मुझे जगाया, परिछावन की रसम अदा हुई। शादी की दूसरी रसमें भी अदा की गईं। मेरा विवाह हो गया लेकिन न तो आज मुझे वे रसमें याद हैं और न ही यह याद है कि उनमें मैंने कौन-सा हिस्सा लिया। बचपन में मेरी बहनें गुड्डे-गुड़ियों से खेला करती थीं; यह विवाह भी मेरे लिये कुछ वैसा ही था।"

विवाह के समय छोटी आयु होने के कारण पति-पत्नी को कई वर्षों तक एक संग बैठने का अवसर नहीं मिला। विद्यार्थी-जीवन पूरा होने के बाद ही आप को अनुभव हुआ कि विवाह की कौन-सी ज़िम्मेदारियाँ हैं। किन्तु, पुनः कार्य-क्षेत्र में जूझ जाने के कारण आपने गृह-जीवन का सुख-विलास कभी नहीं भोगा। जब

वकालत करते थे तब घर से बाहिर कलकत्ता जाना पड़ता था। घर के सदस्य पटना में ही रहते थे। कलकत्ता से पटना वापिस आने के पांच छः वर्ष बाद १९२० में असहयोग की आँधी चल पड़ी। उसमें आप गृहजीवन के सब सुखों का परित्याग करके कूद पड़े। पटना के 'सदाक़त आश्रम' को ही आपने घर बना लिया। फिर भी गृहजीवन के सुख-दुख का प्रभाव तो आप पर पड़ता ही रहा। गृहजीवन में सुख-दुख दोनों एक साथ आते हैं। १९३३ में आपके बड़े भाई का देहान्त हो गया। बड़े भाई ने कई उद्योग-व्यवसाय किये थे। चावल साफ़ करने का कारखाना भी खोला था। किन्तु उसमें घाटा हुआ। उनके स्वर्गवासी होने के समय कुटुम्ब पर ६०-६५ हज़ार का ऋण हो गया था। राजेन्द्रबाबू ने उस ऋण को चुकाने के लिये सारी ज़मींदारी बेच दी। फिर भी वह ऋण-भार नहीं उतरा। तब सेठ जमनालाल बजाज की उदारता से आप ऋणमुक्त हुए। बड़े भाई के स्वर्गवास के बाद आपके लड़कों--मृत्युञ्जय और धनंजय ने घर का काम संभाला।

मृत्युञ्जय का विवाह बिहार के वयोवृद्ध लोकसेवी श्री ब्रजकिशोर बाबू की पुत्री से हुआ। कुछ समय बाद

ही उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। ब्रजकिशोर बाबू भी स्वर्गवासी हो गये। इन पारिवारिक दुर्घटनाओं से राजेन्द्र बाबू का हृदय बहुत व्याकुल हो गया था। उनकी व्याकुलता का कुछ संकेत उनकी 'आत्मकथा' में लिखित निम्न पंक्तियों से मिलता है--

"जब मैं बिहार में हिन्दू-मुस्लिम दंगों की खबर पाकर पटना जा रहा था तभी मुझे मृत्युञ्जय की पत्नी के देहान्त का समाचार मिला। घर पहुँचा तो बच्चों का कोलाहल और स्त्रियों का रोना-पीटना सुना। वहाँ से जाकर मैं पटना ज़िला के गांवों में हिन्दू-मुस्लिम दंगे रोकने में लगा रहा। जहाँ हज़ारों लोग मारे गये और हज़ारों घरों में शोक और कोलाहल था। वहाँ अपने घर का शोक शायद शरमा कर दब गया।"

परिवार में घटित एक और मृत्यु का ज़िक्र करते हुए आप लिखते हैं--"रांची में बहुत दिनों तक कष्ट सहकर बच्चा प्रकाश अकाल में काल का ग्रास बन गया। उस समय मैं दिल्ली में था। टेलीफ़ोन पर उसकी चिन्ताजनक स्थिति का समाचार मिलने के बाद मैं चलने की तैयारी कर ही रहा था कि उसके स्वर्गवासी होने की खबर मिल गई। उसका बड़ा भाई

मोहन १२ वर्ष पहले चल बसा था। वह घाव अभी तक मौजूद है। आज भी उसकी याद आने पर आंखों में आंसू आ जाते हैं। अब यह दूसरी चोट काल ने लगाई है। इस बेबसी का कोई उपाय नहीं। ईश्वर की यही इच्छा है। बच्चों को इस प्रकार आकर चले जाना ही होता है तो वे आते ही क्यों हैं? यह भी भगवान् की लीला है। इसका भेद वही जानता है, हम उसकी लीला को नहीं समझ सकते।"

आज देश के सबसे ऊँचे पद पर पहुँचने के बाद भी राजेन्द्रबाबू का गृहजीवन पहिले के समान ही तपस्यामय बना हुआ है। जो सादगी पहिले थी वही अब भी है। बच्चों से खेलना ही आपका सबसे बड़ा मनोरंजन है। देश की बड़ी जिम्मेदारियों को उठाते हुए भी आप घर की छोटी-छोटी जिम्मेदारियों को भूलते नहीं हैं। कुटुम्ब के प्रत्येक बच्चे पर आपका एक समान स्नेह रहता है। भाई के परिवार का पालन-पोषण भी उसकी अनुपस्थिति में आपके ऊपर आ गया है। कर्त्तव्यपरायण राजेन्द्रबाबू घर के कर्त्तव्यों के प्रति भी वैसे ही सतर्क रहते हैं जैसे देश के कर्त्तव्यों के प्रति।

४. गाँधीजी से पहली भेंट

देश की राजनीतिक हलचलों में थोड़ी-बहुत दिलचस्पी तो आप १६०५ से लेने लगे थे, किन्तु १६१७ में गाँधीजी से भेंट होने के बाद उस दिलचस्पी का रूप बिल्कुल बदल गया। गाँधीजी ने प्रथम भेंट में ही आपके हृदय को जीत लिया। वह भेंट विहार स्थित चम्पारन के सत्याग्रह के सम्बन्ध में हुई थी। दक्षिण अफ्रीका से आने के बाद भारत में सत्याग्रह और सविनय-आज्ञा-भंग का प्रथम प्रयोग गाँधीजी ने चंपारन में ही किया था।

चंपारन में नील के खेतों के मालिक अपने किसानों पर अत्याचार कर रहे थे। उनकी उपज का एक बड़ा भाग मालिकों को व्यर्थ ही मिल रहा था। मेहनत किसान करते थे और लाभ मालिकों के पेट में जाता था। मेहनत करने को किसान कानून की दृष्टि में भी बाध्य माने जाते थे। बाधित कुली प्रथा प्रचलित थी। किसानों के प्रमुख नेता राजकुमार शुक्ल ने गाँधीजी के सामने चंपारन के किसानों की दुख-कथा सुनने के बाद उनसे चंपारन में स्वयं जाकर हालत देखने का आग्रह किया। गाँधीजी उन दिनों लखनऊ काँग्रेस के अधिवेशन

पर लखनऊ आये हुए थे। राजकुमार शुक्ल का आग्रह इतना प्रबल था कि गाँधीजी इन्कार नहीं कर सके।

गाँधीजी को पटना लाकर राजकुमार शुक्ल उन्हें श्री राजेन्द्रबाबू के घर ले गये। राजेन्द्रप्रसाद जी उस दिन 'पुरी' गये थे। इसलिये उनसे भेंट नहीं हो सकी; किन्तु उनके नौकर ने आपके सत्कार में कोई त्रुटि नहीं होने दी। गाँधीजी दूसरे दिन अपने गन्तव्य स्थान मुजफ्फरपुर पहुँच गये। तीसरे दिन श्रीराजेन्द्रप्रसाद पुरी से वापिस आकर गाँधीजी से मिले। उनके साथ बिहार के राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता की ब्रजकिशोर बाबू भी थे। इन दोनों बिहारी वकीलों की नम्रता, सादगी और भलमानसी देखकर गाँधीजी का मन बहुत प्रसन्न हुआ। उस दिन से ही दोनों के बीच जन्मभर के लिये स्नेह-गांठ बन्ध गई। उन दिनों राजेन्द्रबाबू किसानों के मुक-दमे तो लड़ते थे, किन्तु इस लड़ाई का खर्च किसानों से पूरी तरह वसूल कर लेते थे। महात्मा गाँधीजी ने बिहार के वकीलों की इस नीति का विरोध करते हुए अपनी आत्मकथा में लिखा है कि 'त्यागी होते हुए भी राजेन्द्रबाबू और ब्रजकिशोरबाबू किसानों से अपनी फीस लेने में नहीं चूकते थे।' उनसे जब गांधीजी ने यह बात

पूछी तो उन्होंने कहा था 'पेशे के काम में अगर फ़ीस न लें तो हमारे घरों का खर्च नहीं चल सकता और हम इन लोगों की मदद भी नहीं कर सकते।'

गाँधीजी ने सबसे पहले किसानों को मुकद्दमे न लड़ने का आदेश दिया। बाद में स्वयं मालिकों से मिले। यह बातचीत चल ही रही थी कि उन्हें चम्पारन से बाहिर चले जाने की सरकारी आज्ञा मिल गई। गाँधीजी ने इस आज्ञा को मानने से इन्कार कर दिया। अदालत में मुकद्दमा चला। बाद में बड़े लाट की आज्ञा से मुकद्दमा उठा लिया गया। बिहार के गवर्नर सर एडवर्ड गेट ने गाँधीजी को आदर के साथ अपने पास बुलाया और 'जांच कमेटी' नियुक्त करने का वचन दिया। गाँधीजी भी उस कमेटी के सदस्य बने। जांच समिति ने पूरी तहकीकात के बाद किसानों की शिकायतों को सच्चा बताया। कमेटी की सिफारिशों से किसानों के कष्ट दूर किये गये।

चंपारन में गाँधीजी की कार्यशैली और उनकी महानता से राजेन्द्रबाबू बहुत प्रभावित हुए। उस दिन से वे गाँधीजी के अनन्य भक्त बन गये। बाद में आपने एक पुस्तक लिखी 'चंपारन में महात्मा गाँधी'। उस पुस्तक के पढ़ने से भी यही मालूम होता है कि गांधीजी ने

चंपारन में सफलता पाकर राजेन्द्र बाबू के दिल में अमिट श्रद्धा का स्थान बना लिया था।

५. बिहार के गाँधी

चंपारन में सत्याग्रह का प्रयोग सफल हुआ। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की सफलता का ज्ञान देशवासियों को पहिले से था। इसलिये इन दोनों सफलताओं से उत्साहित होकर देश ने १९२० में रौलट एक्ट के विरुद्ध भी सत्याग्रह करने का निश्चय किया।

गाँधीजी ने इस सत्याग्रह से पूर्व देश का भ्रमण किया और प्रत्येक प्रान्त से कुछ व्यक्तियों को चुन लिया। चुनाव करने में गाँधीजी बड़े निपुण थे। व्यक्ति को पहचानने में उन्हें असाधारण कौशल प्राप्त था। उनका चुनाव कभी विफल नहीं हुआ। उनके चुने हुए व्यक्ति ही बाद में देश के नेता बने। आपने बंगाल से श्री चित्तरंजनदास, मद्रास से श्री राजगोपालाचार्य, गुजरात से वल्लभभाई पटेल, उत्तर प्रदेश से जवाहरलाल नेहरू और बिहार से श्री राजेन्द्रबाबू को सत्याग्रह के युद्ध के लिये अपना सेनापति चुना था। आज भी यही नेता देश के कर्णधार हैं। स्वराज्य का युद्ध

इन महारथियों के बल पर ही लड़ा गया था।

सत्याग्रह का युद्ध प्रारंभ करने से पहले गाँधीजी ने एक सत्याग्रह-सभा बना दी थी। सभा के सदस्यों को सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ते थे। इस सभा में श्री राजेन्द्र बाबू भी थे।

सत्याग्रह का युद्ध शुरू होने पर राजेन्द्र बाबू ने बिहार में सत्याग्रह का नेतृत्व ग्रहण कर लिया। बिहार को गाँधीजी का सन्देश सुनाने में राजेन्द्र बाबू ने इतनी तन्मयता दिखाई कि लोग उन्हें 'बिहार का गांधी' कहने लगे।

राजेन्द्र बाबू की अगले जीवन की कथा स्वतंत्रता के युद्ध की कहानी है। गाँधीजी द्वारा प्रज्ज्वलित यज्ञाग्नि में आपने जीवन की आहुति दे दी। तब से सारा समय देश की सेवा में बीतने लगा।

१९२१ में प्रिन्स आफ़ वेल्स के भारत आने की घोषणा हुई। गाँधी जी ने युवराज के स्वागत का बहिष्कार किया। सब स्थानों पर सम्राट के पुत्र का स्वागत काले झंडों और हड़तालों से किया गया। इस असफलता पर सरकार को क्रोध आ गया। उसने स्वयंसेवकों पर अत्याचार शुरू कर दिया। काँग्रेस को भी सत्याग्रह

जारी करने का हथियार मिल गया । हज़ारों की संख्या में लोग स्वयंसेवक बनने लगे । युक्त-प्रान्त में श्री मोती-लाल नेहरू और बिहार में राजेन्द्र बाबू भी स्वयंसेवक बनकर गिरफ़्तार किये गये ।

जेल जाने का यह प्रथम अवसर था । इसके बाद आप अनेक बार जेल गये । गाँधी जी के आदेशों का आप अक्षरशः पालन करते थे । अन्य राजनीतिक नेताओं से गाँधीजी का कई बार मतभेद हुआ था देशबन्धु दास, पं० मोतीलाल नेहरू और श्री विट्ठलभाई पटेल ने परिवर्तनवादी बनकर कौन्सिल में जाने का निश्चय कर लिया था किन्तु राजेन्द्र बाबू सदा गाँधी जी के पदचिह्नों पर चलते रहे । वे अपरिवर्तनवादी ही बने रहे । अपरिवर्त्तनवादी काँग्रेस के रचनात्मक कार्यों पर ज़ोर देते थे । राजेन्द्र बाबू भी कौन्सिल में जाकर राजनीतिक दलबन्दियों की लड़ाई लड़ने की अपेक्षा काँग्रेस के रचनात्मक कार्य को महत्त्व देते थे । बिहार में आपने जो रचनात्मक कार्य किया उस पर गाँधी जी को भी अभिमान था । प्रत्येक राष्ट्रीय कार्य में बिहार सबसे आगे रहता था । खद्दर के प्रचार में भी बिहार ने ठोस काम किया था ।

आज भी राजेन्द्र बाबू रचनात्मक कार्यों को ही पसन्द करते हैं। खद्दर का जो व्रत आपने २५ साल पूर्व लिया था उसे आज भी निभा रहे हैं।

आज भी आप प्रतिदिन कुछ घंटे चरखा चलाते हैं। राष्ट्र के प्रेजिडेन्ट होते हुए भी आपको चरखा चलाने का समय मिल जाता है।

लगभग आठ वर्ष तक रचनात्मक कार्यों का अध्याय चलता रहा। १९१९ में फिर सत्याग्रह युद्ध का बिगुल बजा। साइमन कमीशन के बहिष्कार के बाद लाहौर की काँग्रेस ने जवाहरलाल जी की अध्यक्षता में पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास कर दिया था। उसके बाद गांधी जी ने १९२९ की समाप्ति के पूर्व ही नमक-सत्याग्रह शुरू कर दिया। गांधी जी ने वायसराय को चेतावनी दे दी थी कि भारतवासियों की मांगें पूरी कर दो अन्यथा नमक का कानून तोड़कर सत्याग्रह युद्ध शुरू कर दिया जायगा। १९३० में सत्याग्रह का युद्ध शुरू हो गया। राजेन्द्र बाबू ने भी जेल की यात्रा की।

६. विहार का भूकम्प

अभी आप सरकार के मेहमान ही थे कि १५ जन-

वरी १९३४ को बिहार में भूकम्प आ गया। उस समय आप पटना के अस्पताल में बीमार थे। आपका स्वास्थ्य जेल में बहुत खराब हो गया था। चिकित्सा के लिये आपको अस्पताल में लाया गया था। भूकम्प आने के दो दिन बाद आपको रिहा कर दिया गया। चारों ओर से सरकार पर यह दबाव डाला गया कि बिहार के भूकम्प-पीड़ितों की सहायता का काम केवल राजेन्द्रबाबू कर सकते हैं।

राजेन्द्रबाबू ने अस्वस्थ होते हुए भी पीड़ितों की सहायता का काम अपने हाथ में ले लिया। इस भूकंप से बिहार का उत्तरीय भाग खंड-खंड हो गया था। लाखों लोग निराश्रित हो गये थे। शहर के शहर भूमिसात हो गये थे। गांवों के गांव नदी के बहाव में बह गये थे। भूकम्प के कारण नदियों के धरातल में भी उथल-पुथल होगई थी। डाक्टरों की सलाह न मानकर भी आपने बाढ़-पीड़ित स्थानों का स्वयं निरीक्षण किया। सैकड़ों मीलों की पैदल यात्रा की और निराश्रितों के लिये आश्रय, निर्वस्त्रों के लिये वस्त्र तथा भूख से तड़पते लोगों के लिये अन्न का प्रबन्ध किया। आपकी अपील पर चारों ओर से धन की वर्षा होने लगी। प्रत्येक प्रान्त से स्वयं-

सेवक-दलों की टुकड़ियाँ सेवा-कार्य के लिये बिहार पहुँचने लगीं। लाखों रुपयों का कोष एकत्र हुआ था। उसके समुचित बँटवारे का प्रश्न बड़ा विकट था। आपने बड़े धैर्य से इस महान् काम को पूरा किया। एक वर्ष तक यह सहायता-कार्य चलता रहा। इस कार्य ने राजेन्द्र बाबू की संगठन-शक्ति और कार्यक्षमता का उज्ज्वल उदाहरण देश के सामने रखा। सम्पूर्ण भारत में आपका यश फैल गया। सरकार से असहयोग होते हुए आपने इस सहायता-कार्य में सरकार का सक्रिय सहयोग प्राप्त कर लिया था।

आपकी सेवाओं से मुग्ध होकर देश ने आपको अपना राष्ट्रपति चुना। लोक-सेवा का एकमात्र यही पुरस्कार था, जो देशवासी अपने सच्चे सेवकों को भेंट कर सकते थे। १९३४ के कांग्रेस-अधिवेशन में आप राष्ट्रपति बने। यह अधिवेशन बम्बई में हुआ था। बंबई ने उस समय आपके स्वागत में अपूर्व उत्साह दिखलाया था। वह स्वागत केवल शिष्टाचार का स्वागत नहीं था। उसमें लाखों हृदयों की श्रद्धा भरी हुई थी। बम्बई ने अनेक महान् पुरुषों का स्वागत किया है। राजेन्द्र बाबू का स्वागत उन सबसे निराला था। उस स्वागत-समारोह

की स्मृति सदा अविस्मरणीय रहेगी। उसके १६ वर्ष बाद १६५० में पूर्ण शराबबन्दी की घोषणा के लिये आप जब बम्बई आये थे तो आपने १६३४ के स्वागत की चर्चा करते हुए कहा था कि "मैं उस स्वागत को आजन्म नहीं भूल सकता।" १६३४ के काँग्रेस-अधिवेशन में आपने जो भाषण दिया था, वह विद्वत्तापूर्ण था।

इस अधिवेशन के बाद आप सदैव काँग्रेस की कार्यकारिणी में रहे। १६३६ में गाँधी जी ने देश की राजनीति के दायित्व का बड़ा भाग जवाहरलाल जी के हाथ में सौंप दिया। किन्तु जवाहरलाल जी भी श्री राजेन्द्र बाबू और श्री वल्लभभाई पटेल की सहमति के बिना कोई कदम नहीं उठाते थे। जवाहरलाल जी उग्र स्वभाव के थे। उनके वाक्यों से कई बार कार्यसमिति में तथा आल इण्डिया काँग्रेस कमेटी में तीव्र मतभेद पैदा हो जाता था, किन्तु श्री राजेन्द्र बाबू के प्रयत्न से राष्ट्र की किश्ती भंवर से निकलकर किनारे पर लग जाती थी। पंडित जी अधीर थे और आलोचना को सहन नहीं कर सकते थे। किन्तु अपने पुराने साथियों—जिनमें राजेन्द्र बाबू भी थे—के प्रति श्रद्धा उन्हें संयम में रखती थी। यही कारण था कि लखनऊ कांग्रेस के राष्ट्रपति होते हुए भी वे पुरानी कार्य-समिति

द्वारा बनाये गये प्रस्तावों के सामने झुक गये।

राजेन्द्रप्रसाद जी ने राष्ट्रपति बनने के बाद राष्ट्रपति के कार्यों में बहुत वृद्धि कर दी थी। उनसे पूर्व के राष्ट्रपति इस पद को केवल विगत वर्ष की सेवाओं का पुरस्कार मानते थे। यह पद केवल आभूषण माना जाता था। बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी ने नया मार्ग बनाया, नई प्रथा कायम की। अपने कमज़ोर स्वास्थ्य की परवाह न करके आप वर्ष भर देश का दौरा करते रहे। इससे सारे देश में राष्ट्रीय चेतना जागृत होती रही और प्रत्येक प्रान्त को नया प्रोत्साहन मिलता रहा। पं० जवाहरलाल जी ने भी इस प्रथा को जारी रखा। उन्होंने तो इसका रूप और भी तूफ़ानी कर दिया था। एक-एक दिन में बीस-बीस सभायें कीं और सैंकड़ों मीलों की यात्रा की।

सन् १९३६ के बाद देश का नेतृत्व जवाहरलाल जी के हाथ में आगया। देश का नवयुवक दल उनका अनुयायी हो गया। किन्तु राजेन्द्रबाबू गांधीजी के ही पद-चिन्हों पर चलते थे। गांधी जी के साथ आप भी राजनीतिक क्षेत्र से पृथक् हो गये। उनका समय कांग्रेस की रचनात्मक योजनायों को सफल बनाने में ही व्यतीत होने लगा।

स्वतन्त्रता का अन्तिम युद्ध

१६३६ में फिर योरोप का महायुद्ध छिड़ गया। भारत के वायसराय ने भारतीयों की सलाह लिये बिना भारत की ओर से युद्ध की घोषणा कर दी। वायसराय की इस स्वेच्छाचारिता का प्रतिवाद करने के लिये प्रान्तीय सरकारों के कांग्रेसी मन्त्रियों ने त्यागपत्र दे दिये। गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' का आन्दोलन शुरू कर दिया। एक बार फिर गांधीजी की जय-जयकार से आकाश गूँज उठा। ८ अगस्त १९४२ को बम्बई में 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी' की बैठक हुई। कमेटी में भारत के समस्त नेता उपस्थित थे। राजेन्द्र बाबू भी कार्यकारिणी के सदस्य थे। 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव गांधीजी ने पेश किया। जनता ने अपार उत्साह दिखलाकर प्रस्ताव का समर्थन किया। किन्तु सरकार ने दूसरे दिन ही सब नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया। राजेन्द्र बाबू समेत कार्यकारिणी के सब सदस्यों को पकड़कर सरकार अहमदनगर की जेल में ले गई। अहमदनगर की जेल में सभी नेता इकट्ठे रहते थे। जेल में ग्यारह कमरे थे। दस में सब नेता रहते थे और एक कमरा डाइनिंग

रूम था। यहाँ सब मिलकर बातचीत करते थे। लगभग तीन वर्ष इसी जेल में कटे।

सन् १९४५ में युद्ध समाप्त हो गया। सरकार ने नेताओं को छोड़ दिया और शिमला आकर भावी भारत के शासन की रूपरेखा तैयार करने की दावत दी। इन नेताओं के साथ सरकार ने मुस्लिम लीग को भी निमन्त्रण दिया था। बहुत प्रयत्न करने के बाद भी कांग्रेस और मुस्लिम लीग में कोई समझौता नहीं हो सका। आखिर बहुत सलाह-मशविरे के बाद वायसराय ने दोनों दलों को 'अन्तरिम सरकार' बनाकर देश का संचालन करने का निमन्त्रण दिया। वायसराय के मन्त्रिमंडल में दोनों के प्रतिनिधि लिये गये। जवाहरलाल जो अन्तरिम सरकार के वाइस-प्रेसिडेन्ट बने। यह अन्तिरम सरकार देर तक काम नहीं कर सकी। मुस्लिम लीग के सदस्य देश के विभाजन पर तुल गये थे। वायसराय के मन्त्रिमंडल में रहकर वे देश को हानि पहुँचाने लगे। उनकी मनोवृत्ति केवल सरकारी कामों में बाधा पहुँचाने की थी। वे केवल देश का विभाजन चाहते थे और मुसलमानों के लिये पाकिस्तान नाम से पृथक् राज्य चाहते थे। देश के कल्याण को दृष्टि में रखकर अन्त में कांग्रेस ने देश को विभक्त

करना स्वीकार कर लिया। परिणाम यह हुआ कि सन् १९४७ को १५ अगस्त के दिन हिन्दुस्तान को 'भारत' और 'पाकिस्तान' नाम के दो पूर्णतया स्वतन्त्र देशों में बाँट दिया गया।

उस दिन भारत को सदियों की परतन्त्रता से छुटकारा मिला, गुलामी की बेड़ियाँ टूट गईं।

स्वतन्त्र भारत में श्री राजेन्द्रबाबू का स्थान

स्वतन्त्र भारत के निर्माण में जिन राष्ट्रीय नेताओं ने ठोस काम किया है उनमें श्री राजेन्द्रबाबू का स्थान किसी से भी कम महत्व का नहीं है। भारत के प्रथम निर्वाचित राष्ट्रपति की हैसियत से आज वह देश के सर्वोच्च नागरिक हैं। उनका पद अन्य सभी पदों से अधिक प्रतिष्ठित है। देश के प्रतिनिधियों ने एकमत होकर उनका इस सर्वश्रेष्ठ आसन के लिये चुनाव किया है। यह पद उन्हें केवल संयोगवश या अकस्मात् नहीं मिला। उनकी उम्र-भर की निःस्वार्थ देशसेवा को देखकर और उनके देवोचित गुणों से मोहित होकर ही देश ने एक स्वर से उन्हें अपना सरताज माना है।

राष्ट्रपति चुने जाने से पूर्व आप स्वतन्त्र भारत की विधान सभा के अध्यक्ष थे। लगभग तीन वर्ष तक इस सभा के सदस्य भारत का संविधान तैयार करते रहे। यह कार्य इतना कठिन और पेचीदा था कि देश के बड़े-बड़े वैधानिकों को भी इसके तैयार करने में तीन वर्ष लग गये। विधान सभा का संचालन भी कोई अद्भुत प्रतिभाशाली और लोकप्रिय नेता ही कर सकता था। श्री राजेन्द्र बाबू में ये दोनों गुण थे। आपने कई बार विधान सभा की नाव को चट्टानों से टकराकर टूटने से बचाया है। विधान सभा के सदस्यों में समन्वय कराना तथा विभिन्न पक्षों को एक-दूसरे के प्रति सद्भावना रखते हुए विचार करने के लिये प्रेरित करते रहना राजेन्द्र बाबू जैसे धीरोदात्त व्यक्ति का ही कार्य था।

विधान का मसविदा बनाने का कार्य डाक्टर अम्बेदकर के सुपुर्द किया गया था। उन्होंने अनथक परिश्रम से विधान का मसविदा बनाया था। किन्तु उस मसविदे को सर्वसम्मत बनवाने में राजेन्द्र बाबू ने भी आश्चर्यजनक प्रतिभा का परिचय दिया है। विधान सभा के अध्यक्ष होते हुए भी आपने अपने व्यक्तिगत मन्तव्यों के मनवाने पर कभी ज़ोर नहीं दिया।

राजेन्द्रप्रसाद् जी का व्यक्तित्व

संसार की दृष्टि में ऊँचा चढ़ने वाले प्रत्येक व्यक्ति का विशेष व्यक्तित्व होता है, कुछ विशिष्ट गुण होते हैं, जिनके कारण वह महान् बनता है। राजेन्द्र बाबू में भी कुछ ऐसे दिव्य गुण हैं जो उन्हें उनके सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि में पूज्य बना देते हैं।

इन विशिष्ट गुणों के कारण ही लोग उन्हें किसी न किसी महानतासूचक शब्द से याद करते हैं। गाँधीजी को महात्मा, श्री वल्लभभाई को लौह-पुरुष, श्री तिलक को लोकमान्य, लाला लाजपतराय को पंजाब-केसरी आदि सम्मानित उपाधियों से भूषित किया गया है। राजेन्द्र-प्रसाद को देश-रत्न या बिहार का गाँधी कहा जाता है, किन्तु बम्बई के मेयर ने नशाबन्दी के लिये संगठित एक सभा में स्वागत करते हुए उनको जो उपाधि दी है वह उनके व्यक्तित्व का सबसे सुन्दर चित्रण करती है। मेयर ने उन्हें 'पुण्य-पुरुष' कहा है। राजेन्द्र बाबू का रोम-रोम पुण्य भावनाओं से भरा हुआ है। पुण्य उनकी आकृति पर छाया हुआ है, उनके मन और आत्मा में भरा हुआ है। आप पुण्य की साकार मूर्ति हैं।

आपका स्वाभाव सर्वथा अकृत्रिम और उन्मुक्त है। मन में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। जो बाहिर हैं वही अन्दर हैं। राजनीति में रहते हुए भी छल-कपट या कूटनीति की छाया भी आपके जीवन में नहीं पड़ी है। औद्योगिक सभ्यता में जो विलक्षण स्फूर्ति और चौकन्नापन होता है उससे आप बिल्कुल अपरिचित हैं। भारतीय स्वभाव की शिथिलता के साथ आप में सरलता और स्नेह की प्रचुर मात्रा है। आपके पास पहुँचकर कोई कभी यह अनुभव नहीं कर सकता कि वह अनिमन्त्रित या अनचाहा व्यक्ति है। प्रथम दर्शन में ही वह नवागन्तुक के विश्वासभाजन बन जाते हैं। उनकी आँखों में एक अनिर्वचनीय शालीनता है और उनके चेहरे पर एक प्रकार की सहज स्निग्धता है, जो अतिथि के विश्वास को प्रेरित करती है और उसे यह उत्साह देती है कि वह अपने मन के भावों को निःसंकोच कहता जाय।

इतने सरल होते हुए भी आपमें ओछापन या उथलापन नहीं। उनके मन की गहराई मापना आसान नहीं। हृदय में बच्चों की-सी सरलता होते हुए भी आपकी बुद्धि सदा बहुत गहरे विचार में डूबी रहती है। आपका बौद्धिक स्तर सर्वसाधारण से बहुत ऊँचा है। विधान

सभा की अध्यक्षता के कठिन पद को सरलता से निभाकर अपनी वैधानिक प्रतिभा का जो परिचय आपने दिया है वह आपकी विद्वत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण है। आप अपने विद्यार्थीकाल के सबसे श्रेष्ठ छात्र थे। सार्वजनिक जीवन में भी आपने अद्‌भुत चिन्तन-शक्ति और बहुज्ञता का परिचय दिया है। कानून के आप अगाध पंडित हैं। साहित्य के अनेक अंगों पर आपका अधिकार है। १९३४ में कांग्रेस के अध्यक्ष पद से आपने जो भाषण दिया था, वह बहुत खोजपूर्ण था।

जेल में रहते हुए जवाहरलाल जी की तरह आप भी लिखते रहे थे। बिना विशेष उद्धरण-ग्रन्थों की सहायता से आपने 'खंडित भारत' नाम से जो पुस्तक जेल में लिखी थी वह देश की विभाजन समस्या के विषय पर सबसे प्रामाणिक पुस्तक कही जा सकती है। आपकी स्मरणशक्ति भी विलक्षण है। जीवन की एक-एक घटना आपके स्मृति-पटल पर अंकित है। जेल में आपने 'आत्म-कथा' लिखते हुए किसी डायरी का सहारा नहीं लिया। पुस्तक के ११०० पृष्ठ बिना किसी सहायता के लिख दिये। जीवन के ४० वर्षों का इतिहास ऐसी आसानी से लिख दिया मानों कल की आँखों-देखी बात

का वर्णन कर रहे हों। आप जिसे एक बार देख लेते हैं उसके परिचित हो जाते हैं, उसकी आकृति और नाम को वर्षों तक नहीं भूलते। यही कारण है कि बिहार के प्रायः प्रत्येक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता से आप परिचित हैं।

सहज ही दूसरों को आत्मीय बना लेने का गुण भी आपकी विशेषता है। अपने गांव वालों को तो आपने इतना आत्मीय बना लिया है कि गांव वालों को उनके बड़प्पन का भान ही नहीं होता। जब वे गांव जाते हैं तो अब भी कोई-न-कोई बुढ़िया नई-पुरानी चिट्ठियाँ लिये हुए उनके पास दौड़ती है और कहती है कि 'इन्हें आप पढ़ दीजिये,क्योंकि दूसरे लोग मेरी चिट्ठियाँ ठीक से नहीं सुनाते।' राजेन्द्र बाबू भी बड़े ही प्रेम से बुढ़िया की चिट्ठी पढ़ देते हैं, मानो वह भी विधान-परिषद् का ही कोई प्रस्ताव है या राष्ट्रपति का कोई घोषणा-पत्र है।

अपने गाँव वालों में आप आज भी उसी नम्रता और आत्मीयता से रहते हैं जैसे देश के राष्ट्रपति बनने से पहले रहते थे। एक बार विधान-परिषद् के सभापति होने के बाद जब राजेन्द्रबाबू अपने गाँव आये तब हथुआराज की महारानी ने उनसे हथुआ चलने का अनुरोध किया। हथुआ राज में आपके पितामह दीवान रह चुके थे।

राजेन्द्र बाबू ने रानी की बात मान ली, किन्तु अपने सत्कार में आयोजित दरबार में जब वे पहुँचे तो मंच पर जाने के बदले वे नीचे फर्श पर ही बैठ गये। उनकी इस विनम्रता से रानी एकदम चकरा गई। उसने ऊपर आने का बहुत आग्रह किया, किन्तु राजेन्द्रबाबू ने कहा– "मैं यहाँ पर ही ठीक हूँ। पहले मैं यहाँ का सेवक था, अब भी सेवक हूँ।" बड़ी कठिनाई से उन्हें दरबार के मंच पर बिठाया गया।

प्राचीन प्रथाओं और पुरानी बातों के प्रति आपका प्रेम आज भी अखंडित बना हुआ है। पुराने सम्बन्धों को आप बड़ी श्रद्धा से निभाते हैं और कोई भी ऐसी बात नहीं करते, जिससे उन पुराने विश्वासों के प्रति अनादर के भाव प्रगट हों। किन्तु आप प्राचीनता के अन्ध-पुजारी नहीं हैं। नवीनता के कितने ही वरदानों को आप ने उत्साह के साथ स्वीकार किया है। परदा-निवारण, अछूतोद्धार, अन्तर्जातीय विवाह और वैज्ञानिक शिक्षा के आप उतने ही कट्टर समर्थक हैं जितने कि जवाहरलालजी किन्तु प्राचीन पद्धति के समूल नाशमें आपका विश्वास नहीं है। आपकी गोभक्ति, आपका हिन्दू कोड बिल विरोध, आपका संस्कृत प्रेम–आपके इसी प्राचीन दृष्टिकोण के

परिणाम हैं।

गाँधी जी के अनेक गुणों को राजेन्द्र बाबू ने अपने जीवन में ढाल लिया है। गाँधीजी में एक विशेष गुण यह था कि वह किसी भी कार्य को तुच्छ नहीं समझते थे और किसी काम को इतना महत्त्व नहीं देते थे कि शेष कर्तव्य को भुला दें। सभी कर्तव्य-कर्म उनकी दृष्टि में एक समान थे। गांधीजी की तरह राजेन्द्रबाबू भी किसी काम को बहुत छोटा तथा दूसरे को बहुत बड़ा नहीं मानते।

गांधीजी के आदर्शों को पूजा की दृष्टि से देखते हुए भी आप उन प्रथाओं के अन्ध-उपासक नहीं हैं जिन्हें गांधीवाद का अंग माना जाता है। गाँधीवाद में गाँव को इकाई मानकर देश की आर्थिक व्यवस्था का संगठन होना चाहिए। जवाहरलाल इस स्थापना से असहमत हैं। वे केन्द्रीकरण में विश्वास रखते हैं। वैज्ञानिक युग की दृष्टि से केन्द्रीकरण का सिद्धान्त ही उपयोगी हो सकता है। राजेन्द बाबू गाँधीवादी होते हुए भी इस विषय में जवाहरलाल जी के मन्तव्यों से सहमत हो गये हैं। जब आप खाद्य-मन्त्री थे तब आपने खेती के वैज्ञानिक साधनों को देश की उपज-वृद्धि के लिए आवश्यक बताया था। आपने सम्मिलित खेती

को सम्भव बनाने के लिए ब्रिटेन को ट्रैक्टरों का आर्डर दिया था ।

आपकी कार्य-शक्ति भी आश्चर्यजनक है । गांधी जी की तरह आप सुबह ४बजे ही शैय्या से उठ जाते हैं। पौ फटने से पहले ही आप दिन भर की फाइलें देख लेते हैं और उन पर निर्देश लिख देते हैं । सेक्रेटरी के आने पर वे उन फाइलों के आवश्यक पत्रों का उत्तर लिखाना शुरू कर देते हैं । उस समय भी आप खाली नहीं बैठते, चरखा भी चलता रहता है और पत्रों का उत्तर लिखाना भी जारी रहता है । दिन का कोई भी क्षण आप व्यर्थ नहीं खोते । हर समय कार्यव्यग्र रहते हैं ।

हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने में राजेन्द्र बाबू ने सक्रिय सहयोग दिया है । भारतीय संस्कृति से आपका अगाध प्रेम है । भारतीयता के श्रेष्ठतम आदर्शों के आप जीवित प्रतीक है । फिर भी आप अन्य संस्कृतियों व धर्मों से प्रेम रखते हैं। गांधीजी की तरह आपका हृदय भी सभी धर्मों की उच्च भावनाओं के प्रति सम्मान से झुक जाता है । सहिष्णुता और उदारता में आपको गांधीजी का अनुरूप कह सकते हैं ।

भारत के राष्ट्रपति

भारत के नये संविधान में भारतीय शासन का सब से ऊँचा ग्रासन राष्ट्रपति को दिया गया है। इससे पूर्व इस ग्रासन पर बैठने वाले को 'गवर्नर-जनरल' कहा जाता था। ग्रंग्रेजी राज के ग्रन्तिम गवर्नर-जनरल लार्ड लुई माउन्ट-बेटन के जाने के बाद श्री राजगोपालाचारी को यह सम्मान दिया गया था। संविधान तैयार होने के काल में श्री राजगोपालाचारी इस पद की शोभा बढ़ाते रहे। २६ जनवरी १९५० को संविधान तैयार हो गया। विधान-सभा ने एकमत होकर भारत को सार्वभौम सर्व-तन्त्र स्वतन्त्र प्रजासत्तात्मक राज्य मान लिया। भारत में लोक-शासन की नींव रखी गई। इस लोक-शासन का ग्रध्यक्ष भारतीय पार्लमैन्ट द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति ही हो सकता था। पार्लमैन्ट के सदस्यों के सामने दो नामों का विकल्प था; श्री राजगोपालाचारी ग्रौर श्री राजेन्द्र बाबू। किन्तु सदस्यों ने २६ जनवरी १९५० को राजेन्द्र बाबू का चुनाव एकमत से कर लिया। श्री राजगोपालाचारी ने ग्रपना नाम पहले ही वापिस ले लिया था। इस तरह स्वतन्त्र भारत के वैधानिक राष्ट्र-पति सबसे पूर्व हमारे चरित्र-नायक राजेन्द्रबाबू बने।

राष्ट्र ने आपको गौरवान्वित करके आपकी निःस्वार्थ सेवाओं का योग्य पुरस्कार दिया।

उस दिन के बाद आपकी ज़िम्मेदारियाँ बहुत बढ़ गईं। किन्तु आप उसी सरलता से यह कठिन काम निभा रहे हैं जिस सरलता से आप राष्ट्रपति का कार्य करते थे।

राष्ट्रपति बनने के बाद आपको अनेक नगरों में मान-पत्र दिये गये। दिल्ली में दरबार की आयोजना की गई। सभी नेताओं ने आपके प्रति श्रद्धांजलि भेंट की। बम्बई नगर ने भी ६ अप्रैल १९५० को आपकी सेवा में मानपत्र भेंट किया।

उसमें आपके महान् व्यक्तित्व का चित्रण बड़े सुन्दर शब्दों में किया गया था। वे शब्द ये थे—"राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की तरह आपकी शक्ति भी आपकी नम्रता में छिपी है। इस नम्रता ने आपके विरोधियों का विरोध सच्चे स्नेह में बदल दिया है। इस संकटकाल में हमें यह जानकर अपार सन्तोष होता है कि हमारे देश की बागडोर एक ऐसे महान् व्यक्ति के हाथ में है जो तत्व-दर्शी है और जिसके पथ-प्रदर्शन में देश का अटूट विश्वास है। हमें विश्वास है राष्ट्र की विशाल रचनात्मक योजनाओं में आपका परामर्श सदा हमारे मार्ग की कठिनाइयों को आसान करता रहेगा।"